REVIEW OF RESEARCH
IMPACT FACTOR : 5.7631(UIF) UGC APPROVED JOURNAL NO. 48514 ISSN: 2249-894X
VOLUME - 8 | ISSUE - 7 | APRIL - 2019

सूरदास का भ्रमरगीत

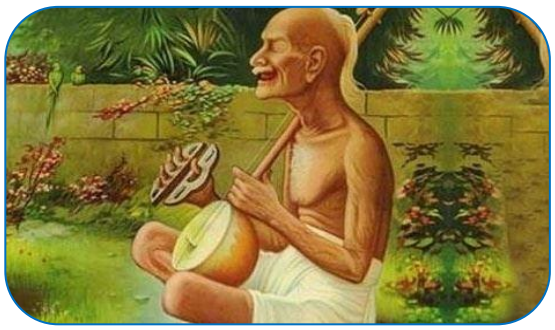

प्रा. डॉ. मीना जाधव
जवाहर महाविद्यालय, अणदूर,

कृष्ण–काव्य के सर्वश्रेष्ठ कवि सूरदास साहित्यका"ा के सूर्य है। ब्रजभाषा को साहित्यिक रुप प्रदास करनेवाले, गोपियों के रुप में विरह की साक्षात् प्रतिमा महाकवि सूरदास हिंदी–साहित्य की ही नहीं वि"व साहित्य की अमूल्य निधि है। सूरदास का प्रमाणिक जीवन–चरित्र अभी तक अनुपलब्ध है। प्रचलित मान्यताओं के अनुसार आगरा से कुछ दूर स्थित रुनकता के पास स्थित ग्राम साही में सन् 1478 ई.मे अनका जन्म हुआ और सन् 1580 ई.में पारसौली गॉव में उनका निधन हुआ। सूरदास की जन्मान्धता भी विवादास्पद है। सूरदास अपने आरंभिक जीवन में रुनकता के पास, गउघाट नामक स्थान पर विनय के पदा गाया करते थे। वल्लभाचार्य जी से भेंट होने के बाद उनकी प्रेरणा से कृष्ण लीला के पदों की रचना करने लगे। वे उत्तम गयै थे, शास्त्रीय संगीत के ज्ञाता थे। उन्होंने विविध राग–रागिनियों में पद–रचना की है। वे अष्टछाप के मुकुटमणि और श्रीनाथजी के प्रधान कीर्तनिया थे। उनकी प्रमुख प्रामाणिक रचनाएँ सूर–सागर, साहित्य लहरी और सूर–सारावली मानी गइ है।

भ्रमरगीत सूरदास की एक उत्कृष्ट निर्मिति है। काव्य रुप की दृष्टि से यह कृति दूत–काव्य की परम्परा में आती है। कृष्ण–भक्तो की ही नहीं अपितु संपूर्ण वैष्णव–भक्तों की यह वि"ोषता रही है कि उन्होंने अपने आराध्य के प्रति अपना प्रेम–निवेदन सीधा न कर विभिन्न आश्रयों के मध्यम से किया है। सूरदास के भ्रमरगीत की यह वि"ोषता है कि इसमें मात्र प्रेम और विरह की द"ाओं का ही चित्रण नहीं है। जो उध्दव योग का संदे"ा लेकर आता है वह अंत में गोपियो के प्रेम संदे"ा को कृष्ण के पास ले जाता है। इस प्रकार से संदे"ा और प्रति संदे"ा दोनों इसमें अनुस्यूत हैं। इसका मूल अभिप्राय ज्ञानयोग की पराजय और प्रेम भक्ति की विजय घोषित करना है। सूरदास के भ्रमरगीत का उददे"य निर्गुण का खण्डन और सगुण का प्रतिपादन करना है। ज्ञान मार्ग के रुक्ष व कठीन मार्ग से बचाकर सरस भक्ति मार्ग की स्थापना करना है।

भ्रमरगीत परम्परा का मूल स्त्रोत श्रीमद्भागवत के द"ाम् स्कन्ध के पूर्वार्ध का सैतालीसवॉ अध्याय हैं, जिसमे गोपियॉ कृष्ण के प्रिय सखा, उध्दव के समक्ष कृष्ण की चर्चा सुनने में मगन हो जाती है। इसी प्रसंग में एक भौंरा उडता हुआ आया और एक गोपी अपनी खीज प्रकट करने के लिए उसी भौंरे के माध्यम से कृष्ण और उध्दव को खरी खोटी सुनाती है। गोपियॉ प्रेमपूर्ण उलाहनों से कृष्ण के कपटपूर्ण प्रेम, निष्ठूरता और क्रुरता पर सोदाहरण टिप्पणियॉ करती है और उध्दव के मन पर सगुण भक्ति की छाप भी डालती है। भ्रमरगीत प्रसंग में भ्रमर के प्रति अन्योक्ति के माध्यम से गोपियों की तीव्र विरहानुभूति अभिव्यक्त हुई है। जो अत्यन्त ललित, ह्रदयावर्धक तथा संगीतमय पदों मे वर्णित है। भ्रमर को माध्यम बनाकर किया गया गोपियों का विद्ग्ध वार्तालाप ही कृष्ण काव्य में भ्रमरगीत के नाम से जाना ह। भागवत के इसी प्रसंग को आधार बनाकर सूरदास ने अपनी असाधारण प्रतिभा से मार्मिक ढंग से प्रस्तुत किया है। भागवत में जहॉ गोपियॉ भक्ति की प्रधानता को ही प्रकट करती है। डॉ. स्नेहलात श्रीवास्तव का मत है, सूरदास ने यद्यपि भागवत को आधार माना है किंतु कथन का विस्तार तथा भिन्न्ता उनकी मौलिक प्रतिभा की व्यजंना है।

सूरदास का भ्रमारगीत मनोरम और आकर्षक है। सूर की अक्षय कीर्ती का भ्रमरगीत स्मारक है। इसमें विरहानुभूति का वर्णन अद्वितीय है। वियोग से उत्पन्न विरहानुभूति ही भक्तिभावना को चरम उत्कर्ष प्रदास करती है। गापियों के प्रेम की वास्तविकता का परिचय वियोग में ही होता है। उध्दव के आने से पूर्व गोपियों का विरह आ"ाा और प्रतिक्षा भरा था लेकिन उध्दव के आने पर आ"ाा की डोर ही टूट जाती है। अब प्रतिक्षा निरर्थक है – आस रही जिय कबहू मिलन की, तुम आवात ही नासी।

उध्दव ब्रज में आते ही गोपियों को निर्गुण ब्रहम की उपासना का उपदे"ा देने लगते है। विरह की मारी गोपियॉ गहरी दुखानुभूति में भर कर उध्दव का संदे"ा सुनती है–

ताहि अजहु किन सबै सयानी, खोजत जाही महामुनी ज्ञानी।
जाके रुप रेखा कुछ नाही, नयन मुँदि चितवन चित माहो।
ह्रदय कमल के जोति बिराजे, अनहद नाद निरन्तर बाजै।
इडा पिंगला सुखमन नारु, सून्य सहज में बसै मुरारी।

गोपियॉ तो नंदनंदन से मन, वचन और कर्म से गहरी भक्ति करती हैं। उन्हे उध्दव के वचन करुई ककरी, के समान लगते है। वे बडे भोलेपन से कहती है।

तौ हम मानै बात तुम्हारी।
अपनो ब्रहम दिखा वहू उधौ मुकुट–पितांबरधारी।।

भूत समान ब्रहम की उपासना वे कैसे कर सकती है। उन्हे ज्ञान का प्रतिक है। उध्दव को फटकारते हुए कहती हैं–

रहुरे मधुकर मधु मतवारे
कोन काज या निरगुन सौ, चिर जीवहू कान्ह हमारे।

वे ता केवल श्रीकृष्ण की प्रीति और भक्ति से अनुस्यूत है। गोपाल के विरह में उन्हे कुँह भी बैरी लगते है, राह देखते उनकी ऑखे गुजों के समान हो गयी है। उनकी अखियॉ केवल हरि द"ान की प्यासी है। उसम कमलनैन को देख न पाने के कारण रात–दिन उदास रहती है। आखिर गोपियॉ भी क्या करें उनके माखनचोर ह्रदय में ऐसे गड गये है कि निकाले नहीं निकलते। वो तो अपनी त्रिभंगी छवी में ह्रदय में तिरछे हो कर अड गये हैं।

वे उध्दव से प्रार्थना करती है कि, तुम जाकर कृष्ण से केवल इतना कह देना कि गोपियों के शरीर रुपी वृक्ष को ह्रदय के श्वासरुपी पवन से युक्त विरहाग्नि ने अत्यन्त प्रज्वलित कर दिया है। हमारा यह सारा दुःख तुम अव"य ही बताना –

उधी जो हरि हितू तुम्हारे
तो तुम कहियो जाय कृपा करी, ए दुख सबै हमारे।

गोपियॉ कृष्ण के प्रति अनन्य प्रेम और वि"वास को किसी भी साधना से श्रेष्ठ मानती है। यदि उध्दव उनके प्रेम को लौकिक बताकर एक उच्चस्तरीय ज्ञान और योग की ओर संकेत करते है तो गोपियॉ भी वाक्चातुरी से उध्दव को चकित कर देती है–

उधौ मन न भये दस बीस।
एक हुतो सो गयो स्याम संग को अवराधै ईस।।

अब वे किस मन से उध्दव के निर्गुण ब्रहम की उपासना करे। अब तो वे उधौ की बात सुनने की मनःस्थिति मे ही नहीं है। वे उध्दव पर व्यंग्य के बाण छोडने लगती है–

आयौ घौष बडो व्यौपारी।
खेप लादि गुरु ज्ञान जोग की, ब्रज में आनि उतारि।

तो कभी कहती है 'आयो जोग ब्रज न बिक है।' गोपियों के व्यंग्य से उध्दव तिलमिला उठता है। अचरज की बात तो यह कि इन भोली ब्रज बालाओं की सामान्य उक्तियों से उध्दव की सारी उक्तियॉ निर्बल, निस्तेज हो जाती है।

भ्रमरगीत मे राधा का चित्र अत्यन्य सौम्य शालीन और संक्षिप्त है। जब कृष्ण मथुरा जाने को उद्यत होते हैं तो उस समय वह विद्रोह करने पर उतारु होकर कहती है–

"हौं सांवरे के संग जै हों।
होनी होइ सु होइ उभै लै हठ य"ा–अपय"ा काहू न डरै हौं।"

लेकिन जब कृष्ण उसे छोड चले जाते तो वह मूर्च्छित हो जाती है। यह मूर्च्छा ही स्तब्धता मे बदल जाती है। उसके मन का क्षोभ, आक्रोष,ग्लानि,स्नेह आदि मन के भीतर ही घुमडते रहते है। उध्दव के सामने भी वे साश्रु मूक बनी रहती है। जब प्रिय ने ही उसके प्रेम का उपहास किया है तो अपनी इस लांछना और तिरस्कार का ढिंढोरा क्यों पिटती फिरे। वह करुणा और दैन्य की साक्षात् मूर्ति बन जाती है –

'अति मलिन वृषभानुकुमारी। '

उध्दव मथुरा लौटकर राधा की द"ाा का अत्यन्त मार्मिक वर्णन करते हैं –

"गो देखत कही उठी राधिका, अंक तिमिर कौ दिन्ही।
तन अति कंप विरह अतिव्याकुल, उर धुक–धुक अति किन्ही।"

राधा की करुण द"ाा का वणन सुनकर कृष्ण भी विकल हो जाते हैं। उध्दव तो कृष्ण से फिर ब्रज लौटने की बात कहने लगते है – 'फिरी ब्रज बसौ नंद कुमार ।" सूरदास की राधा के संदर्भ में आचार्य द्विवेदी जी कहते है– ' वह संयोग में सोलह आना सयोंगमय तो वियोगावस्था में सोलह आना वियोगमय ह। '

मथुरा से जो लोग लौटकर आते है वे तीन सुचनाएँ भी लाते है– कंस को मारकर कृष्ण मधुपुरी के राजा बन गये है, उनके माता–पिता, नंद–य"ाोदा नहीं बल्कि वसुदेव–देवकी है और कृष्ण की अर्ध्दांगिनी कुब्जा नामक कुबडी दासी है। इस तीसरी बात को सुनकर ही गोपियों का विरह प्रखर हो जाता है। गोपियों का विरह प्रखर हो जाता है। गोपियों कों हॅसी भी बहुत आती है कि क्या जोडी मिली है–

"ए अहिर वह दासी पूर की, विधिना जोरी भली मिलाई।"

कृष्ण–कुब्जा का साथ तो ऐसा है जैसे लहसून और कपूर का । गोपियॉ शंकित है कि राधा को त्याग कर कृष्ण कुब्जा को कैसे धारण कर सकते है। लेकिन सूरदास शंका निरस करते – है, सूर मिलै मन जाहि सो, ताकौ कहा करै काजी।।

गोपियॉ खिन्न है कि कृष्ण ने फाग तो हमसे खेला, बिरुद भी गोपीनाथ है और पत्नी बनाया कुब्जा को। यदि उसके कबड से इतना ही प्रेम है तो वे अपनी पीठ पर भी कुबड निकालकर चले। कुब्जा उन गोपियों के लिए मूर्तिमान व्यंग्य बन गई है।

कृष्ण भी अपने परिवर्तित रुप में गोपियों के लिए व्यंग्य बन गये है। विरह में संयोग के क्षण छोटे लगने लगे हैं वे सोचती है – करि गये थोरे दिन की प्रीति। यह प्रेम तो हमारा हनन ही है। तभी तो वे कहती है– 'प्रीति कर दीनी गरे छुरी' या 'डार गये गर फॉसी' गोपियों ने कृष्ण के प्रेम को विहंगम प्रीति का नाम दिया है

जिसने उन्हे आर्यपथ सेभी विमुख कर दिया और कुलमर्यादा भी समाप्त कर दी है। ब्रज वासियां की विरहगाथा कथन के लिए नही अनुभूति के योग्य हो गई है।

सूरदास जी के काव्य में उनका भक्त ह्रदय ही अभिव्यक्त हुआ है। किंतु उसका रुप प्रत्यक्ष न होकर विभिन्न माध्यमों से व्यक्त हुआ है। कभी य"ोदा – नंद, कभी गोपियॉ ंतो कभी राधा के रुप में सूरदास का विरही मन मुखरित हो उठता है। वे तो निरन्तर प्रेम साधना में डूबे रहने वाले कृष्ण के अनन्य भक्त थें। सूरदास के काव्य में उनके ह्रदय की गहन भावानुभूतियों को ही अभिव्यक्त मिली है। सूरदास अपने आराध्य के साथ पूर्ण रुप से घुल मिल गए है। सगुणोपासक भक्त कवियों में सूरदास जी का महत्व निर्विवाद रुप से अनन्य साधारण है।